ग्रन्थकार :
श्रीश्री आनन्दमूर्त्तिजी



आचार्य विजयानन्द अवधूत ।

ग्रन्थकार

श्रीश्रीआनन्दमूर्त्तिजी

आचार्य विजयानन्द अवधूत



आनन्द मार्ग प्रकाशन
तिलजला • कलकत्ता-३९

(रामअवतार द्वारा मूल बंगला से अनूदित)

प्रकाशक :
आचार्य हरात्मानन्द अवधूत
प्रकाशन सचिव
आनन्दमार्ग प्रचारक संघ (रजिष्टर्ड)
भि. आई. पी. नगर, तिलजला
कलकत्ता—३९

प्रथम संस्करण : २१ अक्टोवर, १९९३

मुद्राकर :
आचार्य पीयूषानन्द अवधूत
आनन्द प्रिन्टर्स तिलजला, कलकत्ता—३९

Price Rs.—3·00

ISBN 81-7252-055-7

प्राप्तिस्थान :
आनन्दमार्ग प्रचारक संघ
भि. आई. पी. नगर, तिलजला
कलिकाता-३९

ग्रन्थकार श्री श्री आनन्दमूर्त्तिजी

यहाँ हमारा आलोच्य विषय है—ग्रन्थकार श्री श्री आनन्दमूर्त्तिजी। सन् १९५५ ई० के जनवरी महीने के प्रथम सप्ताह में उन्होंने आनन्द-मार्ग प्रचारक संघ की स्थापना की। संघ की स्थापना के आरम्भ से ही एक के बाद एक ग्रन्थ की रचना उन्होंने आरम्भ की। और ३५ वर्ष तक अनेक पुस्तक-पुस्तिकाओं की रचना की अंग्रेजी, बँगला, हिन्दी तथा संस्कृत भाषाओं में। सिर्फ संख्या बाहुल्य के विचार से नहीं, ग्रन्थों की विषय-वस्तु, भाववैचित्र्य, रचनाशैली के विचार से भी ग्रन्थकार के रूप में उनका स्थान कितना ऊँचा है, यह विद्वान पाठकवृन्द विचार करेंगे। मैं यहाँ उनके विपुल रचना-भाण्डार के सम्बन्ध में संक्षेप में कहता हूँ—

हाँ एक प्रश्न है। सन् १९५५ ई० से, जब से संस्था स्थापित हुई, तब से ही मार्ग गुरुदेव (उस समय उनकी उम्र थी ३४ वर्ष की) एक विद्वान, बहुदर्शी, बहुभाषाविद ग्रन्थकार के रूप में एक से एक बहुमूल्य पुस्तक देने लगे। तब प्रश्न उठता है—संस्था स्थापना के पहले क्या उन्होंने कुछ चिन्तन नहीं किया, या लिखा नहीं? किसी प्राक् प्रस्तुति व्यतिरेक में मनुष्य कभी इस तरह का सुश्रृङ्खल रूप में मनस्वी लेखक के रूप में आत्मप्रकाश नहीं कर सकता।

श्री प्रभात रञ्जन सरकार (उनके लौकिक जीवन का नाम) बाल्यकाल से ही अत्यन्त मेधावी थे। शैशवकाल से ही विभिन्न भाषा और लिपि सम्बन्ध में उनका प्रचण्ड आग्रह था। पाँच-छः वर्ष की उम्र में ही वे बँगला, हिन्दी, भोजपुरी, अङ्गिका भाषाओं में स्पष्ट रूप में बातचीत कर सकते थे। छोटी उम्र में ही अंग्रेजी भाषा में भी उनकी काफी व्युत्पत्ति हुई। वे बाल्यकाल से ही इतने श्रुतिधर थे कि संस्कृत भाषा में लम्बे लम्बे स्तव-स्तोत्र आदि एकबार

मात्र सुनने से ही वे सुललित कण्ठ से शुद्ध शुद्ध उच्चारण कर आवृत्ति कर सकते थे। अठारह वर्ष की उम्र में कलकत्ता में विद्यासागर कॉलेज के, अध्ययन काल में अंग्रेजी, बँगला, हिन्दी तथा उर्दू भाषा में नियमित रूप से प्रबन्ध—कहानी-कविता-गान-ग्राम्य-गीत की रचना करने लगे। उनके आत्मीय स्वजन, बन्धु-बान्धव उनकी किशोर अवस्था की रचनाएँ पढ़कर बहुत विस्मित होते। १९-२० वर्ष की उम्र में डेढ़ सौ से अधिक अंग्रेजी में कविता तथा गानों की उन्होंने रचना की। बीच-बीच में नाटक, प्रहसन, कविता भी लिखते। किन्तु कुछ भी लिख कर उनको संग्रहित कर रखना उनका स्वभाव नहीं था। कालक्रम से वे भुला गये। उनमें से २३ वर्ष की शिशु-साहित्य की दो पुस्तकें (बँगला में) नील सायरेर स्वर्ण कमल और नील सायरेर अतलतल (राङा दादू के छद्मनाम से) उपलब्ध हो सकीं। १९४५-४६ साल में प्रकाशित एक बँगला पत्रिका से ये धारावाहिक रचनाएँ प्राप्त की गई हैं। उन दो पुस्तकों को पढ़कर किसी का साध्य नहीं है कि वह कह सके कि लेखक की उम्र २३ बर्ष है या ६३ है। क्योंकि दोनों रचनाओं की विषय-वस्तु, उपस्थापना कौशल, रस-परिवेशना चरित्र-चित्रण, मनस्तात्विक विश्लेषण, परिवेश-वर्णन तथा शब्द-चयन-चातुर्य देखकर विलक्षण पाठक बहुत सरलता से लेखक की साहित्यिक प्रतिभा के सम्बन्ध में एक सुस्पष्ट धारणा बना सकते हैं।

यही था २३ वर्षीय श्री प्रभात रञ्जन की साहित्य प्रतिभा का प्रथम अभिप्रकाश। मेरा पूर्ण विश्वास है, वे यदि परवर्त्ती जीवन में नैतिकता, आध्यात्मिकता और समाज कल्याण आन्दोलन के पथ पर न जाकर केवल साहित्य और सङ्गीत चर्चा ही वे करते, तब भी वे सारी पृथ्वी पर एक विशिष्ट साहित्यिक और सङ्गीत गुरु के रूप में सुप्रतिष्ठित हो जाते। किन्तु नहीं, उन्होंने समझबूझकर ही

तत्काल पु० = वर्तमान काल तत्त्व पु० = वास्तविकता, यथार्थता
तत्कालीन = उसी काल का तत्क्षण

उस पथ को चुना नहीं। परवर्तीकाल में जो लाखों लाख मनुष्य को नैतिकता और आध्यात्मिकता का पथ दिखायेंगे, वैयष्टिक और सामूहिक कल्याण के लिए एक सर्वानुस्यूत जीवन दर्शन देंगे, विश्व के अगणित तत्वजिज्ञासुओं को ब्रह्मविज्ञान का पथ-निर्देशना देंगे, उनके लिए सुसाहित्यिक और सङ्गीत गुरु होने का पथ बिल्कुल ही ग्रहण-योग्य विवेचित नहीं हुआ। बदले में उन्होंने स्वेच्छा से ग्रहण किया एकदम धर्मगुरु और समाज गुरु का जीवन। इस पथ पर वे मानव जाति के कितने हद तक सार्थक दिशा प्रदर्शक हुए हैं, उसके प्रकृत मूल्यायन के लिए, हमलोगों को और भी कुछ समय तक प्रतीक्षा करनी होगी।

हाँ, मैं कह रहा था उनकी २३ वर्ष की साहित्य चर्चा की बात। तरुण प्रभातरञ्जन को था सभी विषय में प्रबल आग्रह और निष्ठा। फलित ज्योतिष (Astrology), ज्योतिर्विद्या (Astronomy), साहित्य, सङ्गीत, शिल्प, भाषा, लिपि, पुरातत्व, समाजनीति, अर्थ-नीति, राजनीति, दर्शन, विज्ञान, चिकित्सा-विद्या, कृषि, शिल्प, सभी विषय में थे प्रचण्ड आग्रही। उसी समय में चल रहा था द्वितीय विश्वयुद्ध। मित्रशक्ति और अक्षशक्ति के रण हुंकार से समूची पृथ्वी उस वख्त थर्र थर्र कम्पायमान थी। तरुण प्रभातरञ्जन मुंगेर-जमालपुर में एक ऑफिस में कर्मरत थे। उसी ऑफिस में काम करते थे कई एक हजार नौकरीजीवी। नाना व्यष्टि के निकट प्रभात रञ्जन की परिचिति थी नाना प्रकार की, कोई जानता वे आध्यात्मिक जगत् के मनुष्य हैं, योग-तन्त्र के सम्बन्ध में वे बहुत कुछ जानते हैं। इसलिए चलो भूत-भविष्यत्-वर्त्तमान के बारे में उनसे बहुत कुछ जान लिया जाय। मुंगेर-भागलपुर-जमालपुर के समवयस्क तरुणों का आग्रह था तत्कालीन विश्वयुद्ध को लेकर। जानना चाहते युद्ध की गति-प्रकृति, हिटलर-

चर्चिल का भविष्यत् युद्धान्त में रसिया की भूमिका क्या होगी इत्यादि। इसीसे वे आते अपने प्रिय प्रभात दा के पास। धर्मभीरु वयोवृद्ध लोग जानते थे प्रभात बाबू उम्र में तरुण होने से क्या होगा, अध्यात्म जगत् का बहुत कुछ ही जानते हैं। इसलिए चलो उनके यहाँ सत्सङ्ग के लिए। चतुर व्यवसायीगण जानते प्रभात रञ्जन झाड़-फूंक, तन्त्र-मन्त्र, तुक-ताक, सोना को चाँदी करना, चाँदी को सोना करना बहुत कुछ जानते हैं।

अतएव चलो उनके यहाँ यदि मौका मिलने पर अपनी लक्ष्मी भाण्डार को और थोड़ा बड़ा कर लिया जाय। मातृ तुल्या-महिलाएँ दीर्घकाल अपने प्रवासी सन्तानों का हालचाल नहीं पाने से चिन्तित हो आती प्रभात रञ्जन के यहाँ। वे मानती थीं कि प्रभातरञ्जन अपनी अलौकिक शक्ति से उनके प्रवासी सन्तानों का हालचाल बता देंगे। कहना पड़ता है, प्रभात रञ्जन किसी को किसी बात में नहीं, नहीं कहते। इस तरह से विभिन्न रुचि के विभिन्न स्तर के मनुष्यों की भीड़ उनके चारों ओर बढ़ने लगी। उनमें जो आध्यत्मिक साधना के बारे में आग्रही और श्रद्धाशील थे, वे उन्हें चुन चुन योग और तन्त्र-भित्तिक साधना सिखाने लगे। यह बात चलने लगी खूब सावधानी से। जो लोग साधना सीखते वे कभी किसी को उस बात को नहीं कहते। इस तरह से ही प्रभात रञ्जन ने धीरे धीरे अपने परबर्तीकाल के विश्वसंघ की स्थापना की ओर आगे बढ़ते गए। कालक्रम में उनकी संख्या बढ़कर हुई प्रायः तीन सौ के। सन् १९५४ ई० के नवम्बर मास के प्रथम बार उन्होंने प्रकाश्य रूप में सभी मन्त्रशिष्यों को बुलाकर एक दूसरे के साथ परिचय करवा दिया। सभी ही अत्यन्त आनन्दित हुए। इन्हीं निष्ठावान् भक्तों को लेकर उन्होंने स्थापित कर डाला 'आनन्द मार्ग'। ३४ वर्षीय श्री प्रभातरञ्जन हुए 'आनन्द मार्ग प्रचारक संघ' के

सभापति और श्री श्री आनन्दमूर्त्ति जी नाम लेकर नव स्थापित आनन्द मार्ग आदर्श के प्रवक्ता और प्रवर्त्तक। इसी तरह से बीसवीं सदी के द्वितीयार्द्ध के शुरू में ही सूत्रपात हुआ, एक विराट ऐतिहासिक धर्मीय और सामाजिक संस्था आनन्द मार्ग प्रचारक संघ के सञ्चालन का। मार्गगुरु श्री श्री आनन्दमूर्त्ति जी हुए उसी संस्था और आदर्श के प्राणपुरुष।

हाँ, आनन्द मार्ग का इतिहास लिखना इस प्रवन्ध का आलोच्य विषय नहीं है। आलोच्य विषय हैं ग्रन्थकार श्री श्री आनन्दमूर्त्ति जी। हाँ, संघ तो बन गया, किन्तु संघ का आदर्श क्या है, क्या ही है उद्देश्य? उस वख्त संघ की न थी कोई पत्र-पत्रिका, न थी कोई पुस्तक। मार्गीय आदर्श के प्रवक्ता और प्रवर्त्तक के रूप में प्रारम्भ में ही उन्होंने दो काम किया। एक धर्मचक्र और दूसरा धर्म–महाचक्र का प्रवर्तन (बुद्ध का धम्मचक्क प्रवर्त्तन मुद्रा स्मर्तव्य है) मार्ग के साधकगण सप्ताह में एक निर्दिष्ट दिन में निर्दिष्ट स्थान में एकत्र होकर मार्गगुरु निर्दिष्ट ईश्वर-प्रणिधान करते और संस्था के कार्यक्रम को लेकर आलोचना करते। इसका नाम था धर्मचक्र। और दूर-दराज के साधकगण जब किसी एक स्थान पर एकत्र हो दो तीन दिन धर्मगुरु की उपस्थिति में प्रचूर साधन-भजन, सत्सङ्ग और संस्था के काम धाम को लेकर आलोचना करते उसे कहते धर्ममहाचक्र। इस धर्म महाचक्र में मार्ग धर्मगुरु भारतीय अध्यात्म विज्ञान और दर्शन को लेकर दीर्घ प्रवचन देते। इन्हें टेप करके रखा जाता। परवर्त्तीकाल में ये संकलित होकर पुस्तकाकार में प्रकाशित होने लगे। इस तरह से ही उन्होंने अपने आइडियोलौजी को विश्ववासी के सामने अपने स्वभावसिद्ध clear, concise and conclusive रूप में उपस्थापना के लिए प्रस्तुत किया, विपुल रचना भाण्डार। मेरी धारणा है संघ के बाहर खूब

कम ही लोग मार्गगुरु के उस विपुल रचना भाण्डार के साथ में सम्यक रूप से परिचित हैं। फिर पुस्तक तो बहुत से लोग लिखते हैं। कोई लिखता है गल्प, उपन्यास, ४०-५० से भी अधिक। किन्तु वे गल्प उपन्यास ही हैं। किसी ने काव्य, नाटक, शिल्प, साहित्य, सङ्गीत, विज्ञान विषयों पर एक साथ कभी नहीं लिखा। कोई यदि लिखते भी हैं तो दो चार काव्य, कविता की पुस्तक या दो चार शिशु साहित्य या प्रबन्ध-निबन्ध की पुस्तक, विशाल ज्ञान के राज्य में, एक-दो विषय के सम्बन्ध में पढ़ने के लायक दो–चार पुस्तक। किन्तु जीवन के सभी गुरुत्व पूर्णदिशाओं में वैदुष्य मण्डित रचना कितने लोगों ने की है? कहना ही पड़ता है; कि श्री प्रभातरञ्जन थे इस शेषोक्त श्रेणी के ग्रन्थकार। आलोच्य प्रबन्ध उनकी ही बहुमुखी रचना से विदग्ध पाठकों को परिचित कराने का एक क्षुद्र प्रयास मात्र है।

मौलिक = मूल रचना
भास्वर = पृ० २ चमकीला, प्रभा
आप्त = प्रामाणिक
आपूरित = भरा हुआ

पुस्तक परिचय

(1) आनन्द सूत्रम्

यह पुस्तक आनन्दमार्ग का दर्शनशास्त्र है। प्राचीन सूत्र साहित्य की धारा के अनुसार संस्कृत भाषा में रचित ८५ सूत्र और उनका संक्षिप्त टीका संम्बलित इस अमूल्य पुस्तक में ग्रन्थकार ने मार्ग के मेटाफिजिक्स, एपीष्टोमलॉजी और समाज चिन्तन सम्बन्धी नाना मौलिक विषयों के ऊपर आलोकपात किया है। यह पुस्तक कुल पाँच अध्याय में विभक्त है। प्रत्येक अध्याय बोधि की द्युति से भास्वर, स्वच्छ और युक्तिपूर्ण चिन्तन की मौलिकता से परिपूर्ण और आप्तवाक्य के त्रुटिहीन सत्य पर आधारित है। जो लोग मार्गीय दर्शन के संक्षिप्त परिसर और विदग्ध जनोचित भाषा में जानने के आग्रही हैं, उन लोगों के लिए यह 'आनन्दसूत्रम्' पुस्तक अपरिहार्य है।

IDEA AND IDEOLOGY (आइडिया एण्ड आइडियोलॉजी):

'आनन्द सूत्रम्' लिखने के पीछे लेखक का जो उद्देश्य था, Idea and Idealogy पुस्तक लिखने के पीछे भी वही उद्देश्य था। अंग्रेजी जानने वाले पाठक के सामने मार्ग का मूल दार्शनिक भावधारा भलिभाँति उपस्थित करने के लिए, अंग्रेजी भाषा में यह पुस्तक लिखी गई थी।

इस पुस्तक में आलोचना के लिये, स्थान पाया है—सृष्टिचक्र, सञ्चर और प्रतिसञ्चरधारा, प्राण और मन का उद्भव, पञ्चभूत, पञ्चतन्मात्र, दस इन्द्रियाँ, मन, प्राणेन्द्रिय, वृत्ति, कोष, परमात्मा, साधना, जीवन, मृत्यु, संस्कार, मानसाध्यात्मिक समान्तरलता इत्यादि। मार्ग के दर्शन को भलिभाँति जानने के इच्छुक व्यष्टियों के लिये यह पुस्तक विशेष सहायता करेगी।

२) जीवन वेद

अध्यात्म जीवन का प्रारम्भ-विन्दु हुआ नैतिकता (morality) और चरम विन्दु हुआ निर्बीज निर्विकल्प समाधि। नैतिकता साधना की भित्ति भूमि है, चरम लक्ष्य (ultimate goal) नहीं है। इसीसे नैतिकता में प्रतिष्ठित होना साधक का चरम आदर्श नहीं है। साधना मार्ग में यात्रा शुरू करने के लिए ठीक प्रथम पर्याय में साधक को जिस मानसिक समता की आवश्यकता है उसका ही नाम नैतिकता है। 'जीवन वेद' पुस्तक में इस नैतिकता का सहज और वैज्ञानिक व्याख्या दी गयी है। आध्यात्मिक नैतिकता दो स्तर में विभक्त है—(१) यम, (२) नियम। प्रसङ्गतः उल्लेख्य पातञ्जल योगदर्शन का प्रथम दो अंग हुआ यम और नियम (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि)। यम के भीतर है ५ अनुशासन—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। नियम में है और ५ अनुशासन—शौच, सन्तोष, तपः, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान। ग्रन्थकार ने सम्पूर्ण वैज्ञानिक और मनस्तात्त्विक दृष्टिकोण से नीतिविज्ञान के इस दस उपयन्त्र की प्राञ्जल भाषा में व्याख्या की है। 'जीवन वेद' उसीसे साधक जीवन के प्रारम्भ-विन्दु के नीति निर्देशना सम्बलित एक अमूल्य पुस्तक है।

३) आनन्दमार्ग (प्रारम्भिक दर्शन)

नैतिकता के बाद आता है आध्यात्मिकता। आध्यात्मिक जीवन में प्रतिष्ठित होने के लिए प्रयोजन है स्वच्छ आध्यात्मिक दृष्टिकोण। इसके लिए साधक की प्रारम्भिक से धर्मतत्त्व के मूल भावों से सुपरिचित होने की आवश्यकता है। संघ स्थापना के प्रारम्भ से मार्गगुरुदेव ने इसीलिए इस पर्याय में रचना की अपने इस 'आनन्दमार्ग' पुस्तक की। धर्म क्या है, विभु सत्ता क्या है, मैं कौन हूँ अथवा क्या

हूँ, जगत् और भूमा से मनुष्य का सम्पर्क क्या है, जगत् में मनुष्य को किस ढंग से जीवन निर्वाह करना चाहिए, मनुष्य का लक्ष्य क्या है ; आध्यात्मिक अनुशीलन की प्रयोजनीयता क्या है ? धर्मीय दर्शन के इन मौलिक भावों से परिचिति बताकर साधकोचित एक दृष्टिभङ्गी तैयार करना ही इस ग्रन्थकार का मुख्य उद्देश्य है।

सुभाषित संग्रह (१७ खण्ड)

मार्ग गुरुदेव ने संघ स्थापना के साथ ही साथ दो चीजों का प्रवर्त्तन किया—(१) धर्मचक्र (२) धर्म महाचक्र। धर्मचक्र है जहाँ पर मार्ग के गृही साधक–साधिकागण और संस्था के कार्यकर्त्ता सप्ताहान्त में एक निर्दिष्ट दिन को एक निर्दिष्ट स्थान में एक साथ बैठकर ईश्वरोपासना करते हैं और तत्पश्चात् संस्था की कर्मसूची को लेकर आपस में आलोचना करते हैं। धर्म महाचक्र हुआ जहाँ पर दूर दूरान्त से गृही भक्त तथा संस्था के कर्मीगण सैकड़ों, हजारों की संख्या में समवेत होकर ईश्वरोपासना, धर्मालोचना और संस्था के नाना कर्मसूची के बारे में विशद विचार-विमर्श करते हैं। मार्ग गुरु स्वयं उन महाचक्रों में उपस्थित होकर धर्मदेशना दिया करते थे। सब समय उनके धर्ममहाचक्र के प्रवचन होते गम्भीर वैदुष्य और बोधि की दीप्ति से भास्वर। उन्हें टेप किया जाता और बाद में संकलित होकर 'सुभाषित संग्रह' नाम देकर धारावाहिक रूप से प्रकाशित होता। सभी क्षेत्रों में आलोच्य विषय रहता धर्मीय और धर्मविज्ञान सम्पर्कित विषय वस्तु। जैसे—(१) वेद में ब्रह्मविज्ञान, (२) तन्त्र में ब्रह्मविज्ञान, (३) श्रेय और प्रेय, (४) प्रवृत्ति और निवृत्ति, (५) रथ और रथी [श्वेताश्वरोप निषद को भित्ति करके], (६) जड़ और चेतना, (७) लोकायत और लोकोत्तर, (८) अणु और भूमा, (९) अणुमन और भूमामन, (१०) व्यष्टि का ऐश्वर्य (११) क्षीरे सर्पिरिवापितम्, (१२)

'भुवनेशमीडयम्' (१३) 'तस्य भाषा सर्वमिदं विभाति', (१४) यस्य देवे पराभक्तिः', (१५) 'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय', (१६) विवेक पञ्चक, (१७) परम प्रश्न, (१८) ब्रह्म भाव और मानव जीवन, (१६) साधना, (२०) संघर्ष और विकाश (२१) वृहत् का आकर्षण और साधना, (२२) शक्ति और शक्ति-सम्प्रयोग, (२३) मन का अधिरोहण, (२४) भक्त और भगवान, (२५) तन्त्र और साधना, (२६) चितिशक्ति और मानस साधना, (२७) मानसाध्यात्मिक साधना में संवेदना, (२८) कर्मविज्ञान, (२६) कर्म और कर्मफल, (३०) कर्म सन्यास और पराभक्ति, (३१) भक्ति तत्त्व (३२) वैधी भक्ति और शुद्धा भक्ति, (३३) ब्रह्म सद्भाव, (३४) प्रतिसंवेदी पुरुष, (३५) प्रकृति तत्त्व और ओंकार तत्त्व, (३६) साधना और मधुविद्या, (३६) (४०) मन्त्रचैतन्य……और कितने क्या ! सन् १६५५ ई० से शुरू कर सन् १६६० ई० तक धारावाहिक रूप से खण्ड समूह प्रकाशित हुये हैं। पृथ्वी के कई एक विश्व-विद्यालयों में वक्तृताएँ comparative Religion के सिलेबस में अर्न्तभुक्त हुई हैं।

आनन्द वचनामृतम् (२२ खण्ड)

मार्ग गुरुदेव जहाँ कहीं भी जाते स्वाभाविक रूप से वहाँ पर अजस्र भक्तों की जमघट लग जाती। बाबा उनके सामने बैठ कर विभिन्न गुरुत्त्वपूर्ण विषयों पर प्रवचन देते। उनके सभी वक्तव्य ही होते युगोपयोगी और सारगर्भित। यह सभी टेप कर रखे जाते। परवर्तीकाल में ये संकलित कर 'आनन्द-वचनामृतम्' नाम से धारा-वाहिक रूप में प्रकाशित हुए। जैसे एकबार मार्गगुरुदेव ने देव-देवी की आलोचना के प्रसङ्ग में वैदिक देव-देवी, तान्त्रिक देव-देवी, बौद्ध देव-देवी, पौराणिक देव-देवी, लौकिक देव-देवी को लेकर धारावाहिक आलोचना की। ये जिस तरह से थे आकर्षणीय

उसी तरह से शिक्षाप्रद भी। ये 'आनन्द–वचनामृतम्' १८ खण्डों में प्रकाशित हुए। ठीक वैसे ही मार्गगुरुदेव ने एकबार किसी भक्त के अनुरोध पर भगवान श्री कृष्ण के सम्बन्ध में प्रायः १२।१३ प्रवचन दिया। हरेक आलोचना ही थी हृदयग्राही। सप्तदश खण्ड में ये प्रकाशित हुए। कहना ही पड़ता है कि हरेक खण्ड ही जितना चित्ताकर्षक है, उतना ही शिक्षाप्रद भी है।

तत्त्वकौमुदी (१म, २य, ३य खण्ड)

मार्गगुरु नीतिशास्त्र, धर्मविज्ञान और दर्शन के विभिन्न आइडिया को कभी खूब ही वौद्धिक भूमि से विश्लेषण करते, तो कभी खूब ही सरस टीका-टीप्पणी–उदाहरण के साथ व्याख्या करते। जैसे, शरीर, बुद्धि, मन, इन्द्रिय, स्नायु, चक्र, गन्थि, हर्मोन, स्नायुकौषिक स्मृति और अतिस्नायुकौशिक स्मृति (cerebral memory and extra-cerebral memory), प्राप्तवाक्य और आप्तवाक्य, जैवी-सत्ता और भूमाप्राण, इत्यादि की आलोचना करते। परवर्तीकाल में ये संकलित होकर 'तत्त्व कौमुदी' नाम देकर धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ।

आनन्दमार्ग चर्याचर्य (३ खण्ड)

मार्गगुरु–रचित विपुल साहित्य भण्डार को मुख्यतः तीन भाग में बाँटा गया है—धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र और समाजशास्त्र। कहना ही पड़ता है, समाजशास्त्र का परिभू अति वृहत् है। 'आनन्दमार्ग-चर्याचर्य' के तीन खण्ड समाज शास्त्र के अन्तंगत आते हैं। मार्गगुरु-देव के मतानुसार धर्म जिस तरह वैयष्टिक वस्तु है उसी तरह सामूहिक बात भी है। समाज संरचना टिकी रहती है नीति और धर्म की सुदृढ़ नींव के ऊपर। फिर, Q के बगल में जैसे U है वैसे ही धर्म के सङ्ग में नीति का भी सम्बन्ध है। अतः समाज को भलिभाँति

से चलाने के लिए उसकी बिधि-व्यवस्थायें, अनुष्ठानों की नीति और धर्म का एक प्रत्यक्ष सम्पर्क रखकर ही चलना होगा। इस दृष्टिकोण से एकाधार में धर्मगुरु और समाजगुरु के रूप में उन्होंने ग्रन्थों की रचना की है—समाजशास्त्र विषयक पुस्तक—'चर्याचर्य खण्ड समूह का। प्रथम खण्ड में आलोचना की है—शिशु का जात कर्म, शिलान्यास, गृहप्रवेश, वृक्षरोपण, यात्रा प्रकरण, विवाह विधि, जन्म-तिथिकृत्य, स्नानविधि और पितृयज्ञ, धर्मचक्र, तत्त्वसभा, जागृति, दाह-संस्कार, श्राद्धानुष्ठान, आदर्श दायाधिकार व्यवस्था, नारी और पुरुष का सामाजिक सम्पर्क, प्रणामविधि, पोशाक-परिच्छद, नारी की जीविका, अर्थनीति, सामाजिक दण्ड, विधवा, विज्ञान और समाज आदर्श गृहस्थ, आत्मविश्लेषण, तात्त्विक, आचार्य, अवधूत, पुरोधा बोर्ड इत्यादि।

द्वितीय खण्ड में ग्रन्थकार ने आलोचना की है—साधना, शरीर, समाज, विभिन्न जीविका, पञ्चदशशील, साधक के लिए पालनीय आचरणविधि, षोड़श विधि इत्यादि विषयों पर।

तृतीय खण्ड में आलोच्य विषय स्वास्थ्य विधि है जैसे—स्नान-विधि, आहार-विधि, उपवास-विधि, वायुसेवन, दैहिक-संयम, विभिन्न यौगिक प्रक्रिया, आसन, मुद्रा, बन्ध, प्राणायाम इत्यादि।

कणिका में प्राउट (१७ खण्ड)

मार्गगुरुदेव ने आनन्दमार्ग के दर्शन के मूल थेसिस की व्याख्या के प्रसङ्ग में कहा था कि आदर्श समाज का गठन करने हेतु छः उपादान अपरिहार्य हैं—(१) आध्यात्मिक दर्शन (Spiritual philosophy), (२) आध्यात्मिक अनुशीलन विद्या (Spiritual cult), (३) सामाजिक दृष्टिभङ्गी (Social outlook), (४) सामाजिक अर्थनैतिक तत्त्व (Socio-economic theory),

(५) त्रिशास्त्र (धर्मशास्त्र, दर्शन शास्त्र, समाज शास्त्र) और पथप्रदर्शक अथवा गुरु। इस थेसिस के अनुसार मार्गगुरुदेव सन् १९५६ ई० से अपनी सामाजिक और अर्थनैतिक भावधाराओं की व्याख्या करने लगे जो कालक्रम में "प्रगतिशील उपयोग तत्त्व" (Prout Progressive Utilisation Theory) के नाम से परिचित है। प्राउट विषयक आलोचनायें 'कणिका में प्राउट' नाम देकर धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुई हैं। इनमें ग्रन्थकार समाज के क्रमविकाश, नैतिकता, शिक्षा, सामाजिक सुविचार, न्याय व्यवस्था, अपराध-मनस्तत्त्व, सामाजिक मनस्तत्त्व, उद्योग में विकेन्द्रीयकरण, उद्योग नीति। उद्योग में यान्त्री-करण, ट्रेड-युनियन आन्दोलन, उद्योग, कृषि और वाणिज्य, सहकारिता व्यवस्था, दहेज प्रथा, विश्वशान्ति और युद्ध, विश्वैकतावाद और प्रादेशिकतावाद, जातिवाद (casteism), राष्ट्रीयतावाद (Nationalism), विश्वराष्ट्र। विश्व-भाषा और विश्वलिपि, समाजचक्र। संस्कृति और सभ्यता, सामाजिक मूल्य और मानसिक मूल्यवोध, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और गणतन्त्र, मानव प्रगति, सैद्धान्तिक तत्त्व और प्रयोग भौमिक तत्त्व, सम-समाजतत्त्व, प्रमा, मनुष्य का साहित्य और शिल्प साधना, ब्लॉक-भित्तिक और आन्तर्ब्लॉक परिकल्पना, जनसंख्यावृद्धि और नियन्त्रण, सामाजिक और अर्थनैतिक गोष्ठीबद्धता और आन्दोलन, नारी के अधिकार, गणतन्त्र और गोष्ठीतन्त्र, गणतन्त्र का प्रकोष्ठीकरण, सुसामञ्जस्यपूर्ण अर्थनीति, कृषि उत्पादन पद्धति इत्यादि विभिन्न सामाजिक और अर्थनैतिक विषय में उनकी सुचिन्तित अभिमत की इस सिरीज के ग्रन्थों में विशद रूप से आलोचना की है। कहना पड़ता है, श्री प्रभात रञ्जन सरकार की प्राउट थ्योरी ने आज बहुत से विदग्ध मनुष्यों की दृष्टि को आकृष्ट किया है और करती चली जा रही है।

साहित्य विषयक ग्रन्थ (बँगला में) अनुवाद होना बाकी है

(१) लिपि परिचय (२) नूतन वर्ण परिचय (२य खण्ड) (३) ताँड़ा-बाँधा छड़ा (४) नील सायरेर स्वर्णकमल (५) हट्टमालार-देशे (बँगला, हिन्दी) (६) हट्टमालार आरो गल्प (बँगला,हिन्दी) (७) नील सायरेर अतल तले (८) प्रभात रञ्जनेर गल्प सञ्चयन (बँगला-हिन्दी) (१४ खण्ड) (९) प्रभात रञ्जनेर नाटयसञ्जयन (१०) प्रभात साहित्ये आक्लमन्द (हिन्दी-बँगला) (११) विचित्र अभिज्ञता ।

मानव समाज के विकाश में साहित्य का मूल्य अपरिसीम है। साहित्य मनुष्य के मन का खुराक है—मस्तिष्क-पुष्टि की महौषधि है। अखाद्य–कुखाद्य में जैसा शारीरिक रोग दिखाई देता है वैसा ही असंस्कृतिमूलक साहित्य भी मनन करने से विकार उत्पन्न होता है। इसीसे नन्दन जगत् में प्रथम शुरूआत करने के पहले केवल भाव और भाषा की पूँजी रहने से ही नहीं चलेगा—चाहिए गहरा प्रज्ञा-स्नात मर्मी मन।

साहित्य का दो प्रधान धर्म है। एक—आनन्द देना, दूसरा—जगत् का कल्याण करना। जगत् का सब कुछ ही चलते चला जा रहा है—सूर-छन्द-वर्ण-गन्ध के पारमार्थिक भाव तरङ्ग में। साहित्य इस चलने के पथ को शिल्प-सुषमा के रसमाधुर्य से गतिमय कर डालता है—आनन्द धारा में सराबोर कर डालता है। फिर केवल आनन्द विधान की क्षमता रहना ही अन्तिम बात नहीं है ; साहित्य में रहेगा हित या कल्याण का सुमधुर स्पर्श। 'स-हित' या हितने सह'—जिस किसी अर्थ में ही हो साहित्य में कल्याणव्रत रहना ही होगा। इसीसे सु-साहित्यिक श्री प्रभातरञ्जन का स्पष्ट कथन है—"Art for service and blessedness." नन्दनज

समस्त फूल ही खिल उठेंगे सूर्यमुखी हो आनन्द स्वरूप के मुख को देखते हुये।

मानव समाज चक्कर काट रहा है चक्राकार में—एक युग से अन्य युग में। एक युग के अन्त होते ही सूचित होता है अन्य युग के उषा की। आज का समाज हृतसर्वस्व है। शिल्प, संस्कृति, कृषि, धर्म, विज्ञान, नीतिबोध—सब में ही आज अवक्षय की चरम अवस्था है। समाज वृक्ष के समस्त पत्तों में ही आज पीलापन लग गया है। इन्हें आज एक एक कर झड़ जाना होगा—झाड़ देना होगा। युगक्रान्ति के इस चरम मुहुर्त में रक्तिम किशलय के बीच में नई कली खिलाने का भार कवि-साहित्यिक-शिल्पियों का है। और इस काम में जो जितना दक्ष हैं वे उतना सार्थक युगसाहित्यक हैं। साहित्यिक श्री प्रभात रञ्जन सरकार के विपुल साहित्य सम्भार में इस नवयुग की सूचना है। उनके सर्व स्पर्शी दर्शन में, उनके विराट कर्म यज्ञ के प्रत्येक ५ पर्व में, उनकी रचना के छत्र छत्र में, भाव में, भाषा में, आकार में, इङ्गित में इस नवयुग की सूचना की प्रेरणा ही प्रमूर्त्त हो रही है। प्रभात रञ्जन का परिसर दीर्घ है। उसका कुछ अंश पर्यायक्रम से आलोचना की जाय।

शिशु साहित्य

'हट्टमालार देशे', हट्टमालार आरो गल्प', नीलसायरेर स्वर्ण कमल', 'नूतन वर्णपरिचय', (१ म और २य भाग), 'ताड़ा-बाँधा छड़ा', इत्यादि पुस्तकें हुयीं लेखक के अन्यतम शिशु साहित्य। स्वाद में, गन्ध में, वैचित्र्य में, हरेक रचना ही शिशु मन का उपयुक्त खुराक है। शिशु मन को आनन्द देने के लिए लेखक ने संगत रूप से ही शिशु मन के प्रिय उपकरणों को चुन लिया है, राजकुमार राजकुमारी, भूत-प्रेत, दत्य-दानव, व्यङ्गमा-व्यङ्गमी, कुकुर-बिड़ाल,

मौउ-माछी, चौकलेट, पिठेर गाछ इत्यादि के साथ है मन-भुलावन विभिन्न खाद्य। किन्तु साहित्यिक की कलम का मुन्शियाना सिद्ध हुआ शिशु-मनस्तत्त्व के विचार-कौशल की अभिनय दक्षता में, इसके परिवेशन करने की प्रकाश भङ्गी में। साहित्यिक का भूत-प्रेत डाइन-बूढ़ी के किस्से में शिशु मन के हरे पत्ते में सन्त्रस्तता का विद्युत चमक नहीं उठता है। वरन् भूत-प्रेतों के सहज-सरल हार्दिक आचरण में शिशुमन जैसे अलक्ष्य में तैयार हो जाता है, उनके साथ एकीभूत हो जाने के लिये। कहावत है 'कच्चे में नहीं झुकाने से बाँस, पकने पर करता है कड़-कड़। अर्थात् शैशव अवस्था ही हुई, शिशुओं के मनोभूमि में ज्ञानवृक्ष के बीज वपन करने का उपयुक्त समय। इस दिशा में लेखक की लेखनी खूब ही सजग है। १५ वर्ष के शिशु के अन्दर ही छुपा रहता है, एक परिणत मनुष्य की सम्भावना। इसीसे इस वख्त ही आवश्यकता होती है उपयुक्त नैतिकता की शिक्षा की। लँगड़े भूतभाई के सङ्ग परिचय के बहाने कर्मफल के अनिवार्य और भयावह परिणाम के बारे में लेखक ने जिस ज्वलन्त दृष्टान्त का स्थापन किया है, वह आजीवन मन में रखने लायक है। व्यङ्गमा-व्यङ्गमी के द्वारा अतिथि सत्कार के उद्भावन में जिस चरम आत्मत्याग का निखाद दृष्टान्त उपस्थापित हुआ है, वह आज के सभ्य समाज के स्वार्थी मनुष्यों का भी सिर लज्जा से मिट्टी में झुका देगा। इसके अलावे 'सतत् सत्काजे रत थाकबे', 'जे मानुषेर क्षति करे से मानुष पदवाच्य नय', 'लोभ करियो ना, त्यागशील हओ', 'परोपकार मानव जीवनेर व्रत होवा उचित', 'एइ पृथिवीते जाहा किछु आछे सबई नश्वर', 'ईश्वरेर इच्छा पूर्ण हबेइ'—इत्यादि रत्न-जड़ित एक एक नीति प्रस्तर द्वारा जिस ढंग से शिशुमन की नींव जोड़ी गई है, उससे भविष्य में एक पूर्ण नीतिवान् मनुष्य का आत्मप्रकाश अवश्यम्भावी है। जरा सी दृष्टि देने से ही समझा

जाएगा प्रभात-साहित्य के दीर्घ परिसर का सब कुछ ही नीति-समन्वित है।

गल्प :– रवीन्द्रोत्तर गल्प साहित्य में एक नव अध्याय संयोजित हुआ है प्रभात साहित्य का गल्प। गल्प के साथ प्रबन्ध या कथा न्यास का (fiction : इस माने में उपन्यास कहना भूल है) केवल आकृतिगत् नहीं, प्रकृतिगत् अन्तर भी विराट है। प्रबन्ध का गठन थोड़ा सा दृढ़ है और वह आनुषङ्गिक सूत्र भित्तिक है, साधारण पाठक समाज में दुष्प्राप्य भी है। कथान्यास का सुयोग भी व्यापकतर है। किन्तु हुआ सहज ; सरल सरस फिर भी स्वल्प-परिसर है ; तथापि इस स्वल्पायतन में ही लेखक को अपनी घटना अथवा कल्पना का पञ्जीकरण करना पड़ा है। समस्या के इङ्गित के साथ वक्तव्य के मूल सुर को निपुण ढंग से पकड़ना पड़ता है। इसीसे साहित्य की चौहद्दी में छोटे गल्प का आवेदन भिन्नतर है।

ग्रन्थकार के गल्प "प्रभात रञ्जनेर गल्पसञ्चयन" के नाम से प्रकाशित हुआ है। अभी भी पर्यायक्रम से प्रकाशनाधारा जारी है। सभी गल्प की विस्तृत आलोचना का मौका न रहते हुए भी संक्षेप में कुछ वैशिष्ट्य विश्लेषण किया जाय। प्रभात-साहित्य के गल्पों को प्रधानतः निम्नोक्त कई एक विभक्त में भाग कर सकते हैं।

सामाजिक गल्प :—लेखक के अधिकांश गल्प ही अपने निजी जीवन समुद्र की अभिज्ञता से चयन करके ली गयी हैं, कुछ मणी-मुक्ताएँ। अधिकांश सामाजिक गल्प ही हमलोगों के नित्यनैमित्तिक साधारण जीवन धारा में घट जाने वाले छोटे छोटे घटनापुञ्ज हैं। इसीसे ये गल्प खूब ही जीवन्त और वास्तविक हैं। फिर भी अति-वास्तवता का काल्पनिक रङ्ग या अनावश्यक स्फीति में

इसका साहित्यिक प्रसार कहीं भी क्षुन्न नहीं हुआ है। श्री प्रभात रञ्जन की कलानिपुणता और विचक्षणता में हरेक गल्प ही हो उठा है अनवद्य।

लेखक की सामाजिक कहानी में एक विशेष वैशिष्ट्य दिखाई पड़ता है। वह है, सामाजिक कहानियों में कहीं मानविक स्थूल वृत्तिकेन्द्रिक प्रेम का क्रन्दन नहीं है, जो वर्त्तमान युग में अधिकांश लेखक का उपजीव्य है। रोमांश के घुर्नी बातास में या चंचल भावावेग में कहानियों का गठन कभी उलट-पलट नहीं हो पाया है। रोमांश के रोमाञ्चकर जगत् की चाभी को लेखक ने घुमा दिया हैं खूब ही स्वाभाविक और संगत ढङ्ग से, जब जहाँ जैसी आवश्यकता हुई है। सामाजिक कहानी में लेखक का चरण-चारण अति ग्राम्य-जीवन के रसोई-घर से लेकर कम्प्युटर जगत् के राकेट-रोबर्ट तक है। जीवन और जगत् में सर्वत्र उनका अवाध विचरण है।

सामाजिक चरित्र चित्रण में लेखक सिद्धहस्त हैं। 'उइ बाड़ज्जे', 'सेन्सर', 'बियेर झामेला', 'खोला थेके नोला', 'मणिदा तखन वर कर्त्ता'—इत्यादि कहानियों के चरित्रों में पाठक के सामने एकदम जीवन्त है, केवल कहानियों के लिए ही कलम की जादूगिरी हीं है। श्री प्रभातरञ्जन की सभी कहानियों में ही है सामाजिक आचार सर्वस्व, भाव जड़ता के मूल में तीव्र कुठाराघात। एक उदाहरण देता हूँ; 'रेवार पद-ध्वनि—भुँदिवाला सरे याच्छे' कहानी में रेवा के मुँह से उसके दुःसाहसिक पदक्षेप से लेखक ने जिस ढंग से समाज की अमानवोचित विधि व्यवस्था की छाती पर व्यङ्ग-विद्रुप का कड़ा चाबुक चलाया है, वह विवर्तनमूलक प्रगतिपन्थी चिन्तन की फसल है, एक नवयुग का इङ्गितवाही है। 'शामियाना नेता', 'नेता आर न्याता एक नय', 'हिपोक्रिसिर बाँगला बल तो'—इत्यादि कहानियाँ केवल हँस कर पढ़ने के लिए नहीं हैं; वह आज की न्यायनीति

विवर्जित भङ्गी-सर्वस्व नेताओं के चतुर अभिनय अभिसन्धि उजागर करने में सर्वार्थ सार्थक है, जागरुक पाठक मात्र ही इस बात को स्वीकार करेंगे। इस तरह से देख पाता हूँ, देहज की विभि-षिकामय परिणति, सामाजिक न्याय-नीति बोध का अभाव, पौराणिक तन्त्र में नारकीय शोषण यन्त्रणा, पारिवारिक अशान्ति की अग्नि।

अति प्राकृत गल्प

पहले से ही बता दूँ, मैं भूत-प्रेत-दानव-दैत्य अथवा स्वर्ग-नरक में विश्वासी नहीं हूँ, कारण उनके पीछे किसी युक्ति की खोज नहीं पाता हूँ। मैं जानता हूँ भूत-प्रेत, दानव-दैत्य अलौकिकत्त्व की मुहर लगी हरेक वस्तु, मन ही का खेल है। लौकिक अथवा मानसिक परि-पार्श्विकता भेद में ही या सम्भाव्य मन के विभिन्न कोष में इनका उदय होता रहता है; अलौकिकता के सम्पर्क में लेखक की व्यष्टिगत् धारणा ऐसी ही है। श्री प्रभातरञ्जन की अलौकिक घटनायें मनुष्य को एक रहस्य की परिधि से उर्ध्वलोक में ले जाती हैं। सम्भव है यह कुछ डर-भय भी उद्रेक करता है; किन्तु इस भय से मनोरोग की सम्भावना नहीं है, इस भय के साथ जुड़ा हुआ है एक दर्दीला प्रेम। जन्म-मृत्यु का अङ्गाङ्गी सम्बन्ध है, परजन्म का अवश्यम्भावी फलभोग, कर्म बन्धन की करुण आर्त्ति इत्यादि विषय में लेखक की अपनी अभिज्ञता भित्तिक और अभिमत-सम्पर्कित कहा-नियों ने प्राकृत और अतिप्राकृत जगत् में एक लौकिक योगसूत्र की रचना की हैं। अभी तक की उल्लेखनीय कहानी है: 'नीलकुठीर विभिषिका' इत्यादि।

पौराणिक गल्प

'त्रिशंकुर दशा', 'महामायार अभिनय', 'बन्धेर झमेला' शिवकेओ पोहाते हय', 'फलगुतीरे', 'अक्षय बट' इत्यादि पौराणिक गल्प'

श्री प्रभातरञ्जनेर 'गल्पसञ्चयन' में बहुत सा ही जगह आवृत किये हुए है पौराणिक गल्प। पुराणों का वास्तव मूल्य नहीं रहने पर भी शिक्षागत मूल्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इस बात को स्मरण रखकर ही लेखक ने पुराण की स्मृतिचारणा की हैं। लेखक के अधिकांश पौराणिक गल्प ही सम्भवत: हमारे परिचित या अति परिचित हैं। किन्तु शब्द की सज्जा में और रचना चातुर्य में लिखे ऐसे आधुनिक ढङ्ग से सजाया है कि पाठक की कौतुहली दृष्टि आकर्षण विना किये रह नहीं सकती। पढ़ना एक बार प्रारम्भ करने पर कहानियों को शेष करना ही पड़ता है।

नमामि कृष्णसुन्दरम् (दोनों की व्याख्या है)

"कृष्ण का दो रूप है—एक है ब्रज के कृष्ण और दूसरा राजा कृष्ण का है। ब्रज के कृष्ण के सङ्ग में लोग जितने सहज ढ़ङ्ग से परिचित हो पाए हैं, पार्थ-सारथि कृष्ण के सङ्ग उतना घनिष्ठ रूप से परिचित नहीं हो पाए हैं। ब्रज के कृष्ण मधुर हैं और उसी मधुरता में हैं आध्यात्मिक कृष्ण मधुर और उसी मधुरता में है आध्यात्मिकता का मिश्रण, लेकिन पार्थसारथि कृष्ण में है कठोर भूमिका। किन्तु उस कठोरता में है आध्यात्मिकता का मिश्रण। दोनों ही भूमिका में कृष्ण भारतवासी तथा विश्ववासी के सामने दृष्टान्त रख गए हैं। उस दृष्टान्त को मनुष्य की नजर में रखने की आवश्यकता आज भी शेष नहीं हुई है।"—इस मूल सत्य को सामने रख ग्रन्थकार ने अनवद्य भाषा में और निपुण रूप से कृष्ण चरित्र का विश्लेषण किया है। विश्लेषण की पद्धति भी एकदम अभिनव है। जैसे, एक कृष्ण की दो भूमिका, कोमल और कठोरता में, सांख्य दर्शन के परिप्रेक्ष में ब्रज के कृष्ण, सांख्य दर्शन के परिप्रेक्ष में पार्थसारथि कृष्ण, विशुद्ध अद्वैतवाद की दृष्टि में ब्रज के कृष्ण, विशुद्ध अद्वैतवाद की दृष्टि में पार्थसारथि कृष्ण, विशिष्टाद्वैतवाद की दृष्टि में ब्रज

के कृष्ण, विशिष्टाद्वैतवाद की दृष्टि में पार्थसारथि कृष्ण, द्वैतवाद की दृष्टि में ब्रज के कृष्ण, द्वैतवाद की दृष्टि में पार्थसारथि कृष्ण। भक्तितत्त्व की दृष्टि में ब्रज के कृष्ण भी पार्थसारथि कृष्ण, परिप्रश्न की दृष्टि में ब्रज के कृष्ण और परिप्रश्न की दृष्टि में पार्थसारथि कृष्ण और नन्दन विज्ञान की दृष्टि में पार्थसारथि कृष्ण और मोहन विज्ञान में कृष्ण। विभिन्न दार्शनिक दृष्टिकोण से आलोचना के बाद ग्रन्थकार मोहन विज्ञान में आ, दो कृष्ण एक और अभिन्न हो जाते हैं।

सन् १९७८ ई० में ग्रन्थकार ने ३२८ पृष्ठ की कृष्ण विषयक पुस्तक की रचना की। दार्शनिक मतवादों को कृष्ण के व्यष्टित्त्व को आमने सामने रखकर आलोचना करने के अलावे भी लेखक ने कृष्ण और षडस्तरीय आध्यात्मिक अनुभूति, प्रपत्तिवाद, पार्थसारथि कृष्ण के ज्ञानानुशीलन इत्यादि को लेकर भी आलोचना की हैं। सबका निचोड़ है कि कृष्ण तत्त्व विषयक गवेषणा में यह पुस्तक अपरिहार्य है।

नमः शिवाय शान्ताय

आज से ७००० वर्ष पहले तत्कालीन वृहत्तर भारत के उत्तराञ्चल में जो विराट ऐतिहासिक पुरुष आर्य-मङ्गोल-आष्ट्रिक जनगोष्ठी अधुषित समाज में चाप देकर बढ़ रहे थे, वे अनन्य असाधारण बुद्धि और बोधिदृप्त महा मानव थे सदाशिव। जिनके पास भारतीय समाज, सभ्यता और संस्कृति चिर ऋणी होती आई है और रहेगी भी। शिव को जब से मैं पा रहा हूँ, तब से उन्हें सर्वानुस्यूत सत्ता के रूप में पाता हूँ। उस जमाने में अपरिणत अल्पबुद्धि मानव समाज में जब जहाँ पर जिसकी आवश्यकता पड़ी, वहाँ पर-जब जैसा जल पात हुआ है, शिव ने वहीं पर छाता पकड़ा है। इसीसे शिव को विभिन्न रूप से विभक्त करके हम विचार नहीं कर सकते,

इतिहास लिख भी नहीं पाता। इसके साथ ही इस बात को कहने के लिए मजबूर होता हूँ कि मानव सभ्यता और मानव संस्कृति के विवर्तन में शिव की जो विराट भूमिका है, उसमें एक बात कहना ही उचित होगा कि शिव को छोड़ देने पर मानव सभ्यता खड़ी होने की कहीं जगह नहीं पाएगी। किन्तु मानव सभ्यता और मानव संस्कृति को छोड़ देने पर भी शिव स्वमहिमा से भास्वर रहेंगे। इसीसे वर्त्तमान मानव समाज में और सुदूर भविष्य में भी मानव समाज के प्रति सुविचार करने के लिए और यथार्थ इतिहास लिखने के लिए शिव को छोड़ने से नहीं चलेगा। हमलोगों के समाज में जो कुछ सुन्दर महान है, जो हमारे समाज को, संस्कृति को, माधुर्य में पवित्रता में, और रस माधुर्य में निसिक्तकिया है वह सब कुछ ही सदाशिव का अवदान है। उस युग में विवाह प्रथा नहीं थी। शिव ने ही प्रथम उस प्रथा का प्रवर्त्तन किए। उन्होंने एक एक कर समाज को दिया तन्त्र विज्ञान, नृत्य, वाद्य और गीतिविज्ञान ; उन्होंने सिखलायी चिकित्सा-विद्या, और कितना क्या क्या ! उनके विराट असाधारण प्रभाव से ऑष्ट्रिक, द्राविड़, मङ्गोल, आर्य सभी एकत्र हुए। उस युग में सभी ही उनके सम्मान से सम्मानित बोध करते। ग्रन्थकार ने शिव परिक्रमा' बहुधा-पल्लवित शिव, युग युग में शिव, शिवोक्ति, शिवोपदेश, दर्शन के आलोक में शिव इत्यादि के विभिन्न पर्याय में आलोचना की है। ३०० पृष्ठों की यह अमूल्य पुस्तक शिवानुरागी और शिब विषयक गवेषक के लिए ज्ञान के खान के स्वरूप है।

बुद्धि की मुक्ति—नव्यमानवतावाद

"मानव की श्रेष्ठ सम्पत्ति है उसकी मनन शक्ति, उसकी बुद्धि। इस बुद्धि को मैं सम्पूर्ण रूप से कार्य में न लगा सकूँगा, इससे बढ़कर वेदनादायक परिस्थिति और क्या हो सकती है ? इसलिए मन को

मुक्ति चाहिए। उससे पहले बुद्धि की मुक्ति चाहिए। मानवता की सेवा के लिए इस बुद्धि को सर्वप्रकार के बन्धन से, भावजड़ता से विभिन्न प्रकार के अशुभ प्रभाव से, मुक्त करना होगा। जितने दिन तक ऐसा नहीं होता, उतने दिन तक मनुष्य जाति का भविष्य स्वर्णोज्ज्वल हो नहीं सकता। यदि आज के मनुष्य के सामने स्वर्णिम सुप्रभात लाना है, तब तो असीम साहस से खड़ा होकर इस भाव जड़ता के विरुद्ध संग्राम कर बुद्धि की सर्वात्मक मुक्ति घटानी होगी।"

प्रश्न उठता है, यह भाव जड़ता क्या वस्तु है ? ग्रन्थकार ने भाव-जड़ता के प्रसङ्ग में कहा है—"मानव समाज के हित में तथा मानव प्रगति के हित में सबसे विपद्‌जनक वस्तु हुई भावजड़ता (dogma)। डॉगमा वस्तु है क्या ? जहाँ पर उपाय नहीं है, बौद्धिकता का समर्थन नहीं है, वितर्क-आलोचना नहीं है, है केवल जोर-जबरदस्ती है, इसे मानना ही होगा—यही है भावजड़ता (dogma)। लेखक इस ग्रन्थ में नव्यमानवता की व्याख्या करते समय प्रसङ्गक्रम में हमारे समाज में आत्मसुखतत्व, भावजड़ता, मानस-अर्थनैतिक और सांस्कृतिक शोषण, भौम भावावेग (geo-sentiment), सामाजिक भावावेग (Socio-sentimant) प्राक्-सम आध्यात्मिक प्रवणता (Proto-spirituatistic mind), वर्णचोरा माणिक (Demans in human form), metamorphosed-sentimental strategy और Counter-strategy, मानसिक भाव-प्रवणता, यूथ केन्द्रिक भाव प्रवणता, स्वल्पि (Socio-senti-ment–minimites), यूथ केन्द्रिक भाव प्रवणता-सर्ववृहत् (Socio-sentiment-excellensior, Internationalism, Pseudo humanism, spirituality as a cult, spiri-tuality as essence and spirituality as mission इत्यादि पर्याय में वैयष्टिक और सामाजिक मनस्तत्त्व के सम्बन्ध में

विशद आलोचना की है। अन्त में मानव समाज के सर्वात्मक कल्याण के लिए नव्यमानवतावाद का जयगान किया है। मानव जाति आज एक नवयुग के द्वार प्रान्त में आ पहुँची है। इस समय हमलोग किसी भी हालत में अपने मूल्यवान समय का अपचय नहीं कर सकते, मनुष्य जाति में जितना शक्ति-सामर्थ्य निहित है, उन सभी का आज सर्वाधिक उपयोग करना होगा।

फिर यह विश्व केवल मनुष्य का ही विश्व नहीं है, यह विश्व सबका है। हमारा यह जो युग है, यह हुआ नव्यमानवतावाद का युग। जिस युग में मानवतावाद सभी के लिए है और सभी को लेकर हमें एक नया सामाजिक संरचना, नव्यमानवतावाद भित्तिक एक नया समाज बनाना होगा।

आज मानवता नवयुग के चौकठ पर आ पहुँची है। इस युग में नाना युगान्तकारी घटना घट रही है.......याद रखना होगा मानव समाज में भावजड़ता या डॉगमा का युग समाप्त हो गया है।... मानव समाज एक और अविभाज्य है। जाति धर्म विशेष में सभी के कल्याण के लिए एक सामाजिक साम्य व्यवस्था को मानकर ही चलना होगा।

आज हमलोग जो चाहते हैं, वह है मनुष्य जाति की सार्विक उन्नति। और मनुष्य की उन्नति के साथ सभी जीव-जगत् की, जड़ और चेतन सब की उन्नति होगी। इसीसे आज जिसकी आवश्यकला है, वह है मानव अस्तित्व का अधिरोहण अर्थात् मनुष्य के भौतिक, मानसिक, और आध्यात्मिक उन्नति। हमलोग भाव जड़ता नहीं चाहते हम अधिकतर चाहते हैं विचारशीलता, युक्ति प्रवण मानसिकता, जो मनुष्य को परमधाम, परम पुरुष की ओर परिचालित करेगा। ऐसा नव्यमानवतावाद ही विश्व को बचा सकता है, मनुष्य जाति

को मुक्ति दिला सकता है। ग्रन्थकार ने इस पुस्तक में ऐसे नव्य-मानवतावाद का जयगान किया है।

मानसाध्यात्मिक साधना में स्तरविन्यास

ज्ञान दो तरह का है—(१) आपेक्षिक ज्ञान और पारमार्थिक ज्ञान। तत्त्वद्रष्टा ऋषिगण आपेक्षिक ज्ञान की आवश्यकता होने पर भी चरम और परम बोलकर नहीं मानते। वे पारमार्थिक ज्ञान को चरम और परम कहकर मानते थे। उनका कहना था :—

"आत्मज्ञानं विदुर्ज्ञानं ज्ञानान्यन्यानि यानि तु।
तानि ज्ञानावभासानि सारस्य नैव वोधनात् ॥"

भीतरी ज्ञान जिसे आत्मज्ञान कहते हैं—मन की नहीं, आत्मा की होनी चाहिए वही वास्तविक ज्ञान है। और बाकी ज्ञान हुआ ज्ञान का अवभास। उससे मनुष्य असल में कुछ भी जान नहीं पायेगा। हमारे इस जगत् में जो जितना बड़ा ही विद्वान क्यों न हो, जितना बड़ा ही पण्डित हो, जो अपने को जितना बड़ा ही क्यों न सोचे, सभी ही इस अवआत्मस्थीकरण के जगत् के स्तर में कीचड़ उछालते हैं। प्रकृत वस्तु समझ नहीं सकते। इस आत्मस्थीकरण के लिए मनुष्य निर्भर करता है प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम के ऊपर, किन्तु आत्मस्थीकरण के ये तीन उपाय सम्पूर्ण निर्भरयोग्य नहीं हैं। ग्रन्थकार ने आत्मस्थीकरण के इन तीनों की अपूर्णता के बारे में जिस ढंग से विश्लेषण किया है, उस ढंग की वास्तव में ज्ञानक्रिया या आत्मस्थीकरण के लिए (Subjectivisation of objectivities) अति सूक्ष्म ढङ्ग से विश्लेषण किया है। यह बात आपेक्षिक जगत् के तत्त्व की नहीं, यह है सम्पूर्णतः ही मानसाध्यात्मिक जगत् की बात। यहाँ पर ग्रन्थकार अपने वेदोज्ज्वला बुद्धि और बोधि के सहयोग से मानसाध्यात्मिक जगत् के गूढ़ तत्त्वों को सहजबोध्य और प्राञ्जल

भाषा में व्याख्या करने की चेष्टा साधक के लिए की है। प्रसंगत: उन्होंने मानसाध्यात्मिक जगत् के मुख्य स्तर-यतमान्, व्यतिरेक, एकेन्द्रिय और वशीकार के इन चार स्तरों पर चौदह प्रवचन दिया है। इन प्रवचनों को संकलित कर "मानसाध्यात्मिक साधना में स्तर विन्यास" नाम से प्रकाशित हैं। तत्त्वजिज्ञासु मनुष्य के लिए इस पुस्तिका का मूल्य अपरिमेय है।

वर्ण विज्ञान

ग्रन्थकार ने बँगला भाषा के सम्बन्ध में व्यापक गवेषणा के प्रारम्भ में ही 'वर्ण विज्ञान' पुस्तक की रचना की। यहाँ पर 'वर्ण' माने अक्षर (letter) है। चार सौ पृष्ठोंवाली यह पुस्तक तुलनामूलक भाषाविज्ञान सम्पर्कित एक सम्पूर्ण अभिनव और अनवद्य पुस्तक है, जिसका हिन्दी संस्करण भी प्रकाशित कर दिया गया है। इसके अलावे इस पुस्तक में है बँगला तथा संस्कृत-सञ्जात भारतीय भाषाओं की उच्चारण रीति, बनावट, सिनटैक्स को लेकर तुलना-मूलक अत्यन्त गुरुत्वपूर्ण आलोचना। भाषा का वैशिष्ट्य, उपभाषा के साथ भाषा के पार्थक्य सम्पर्कित अध्यायों में भाषाविज्ञान के छात्र, शिक्षक और गवेषकों की सुविधा के लिए अति ही मूल्यवान है। इसकी भाषाशैली और भाषा के विकाश में शब्द निर्माण की प्रवणता, शब्द की व्युत्पत्ति, उत्सारण और विवर्तन (derivation, emanation and distortion) के प्रसङ्ग में आलोचनाएँ भाषाविज्ञान के लिए अपरिहार्य हैं। सार बात कहने पर बँगला भाषा और साहित्य के छात्र, अध्यापक और गवेषक के हित में यह पुस्तक एक मूल्यवान खान स्वरूप है।

मार्गगुरु संघ स्थापना के प्रारम्भ से ही बँगला भाषा के व्याकरण और भाषा विज्ञान को लेकर प्रायः ही आलोचना किया करते थे; किन्तु

वह सब ग्रन्थाकार में लिखा नहीं गया। बहुत समय बाद १९८३ ई० में संघ का कैम्प हेड क्वार्टर जब (मूल केन्द्रीय कार्यालप आनन्द नगर) कलिकाता में स्थानान्तरित हुआ, तब से उन्होंने प्रति रविवार भाषाविज्ञान और व्याकरण को लेकर धारावाहिक आलोचना करना आरम्भ किया। कलिकाता में १९८३ ई० में १९ जून से एकादि-क्रम से इसकी आलोचना होती आई १९८३ ई० ६ नवम्बर तक। रविवासरीय ये आलोचनायें सङ्कलित हो ४२१ पृष्ठ में संकलित 'वर्ण-विज्ञान' पुस्तक प्रकाशित हुई।

लघु निरुक्त

वैदिक युग में 'निरुक्त' कहने का मतलब समझा जाता था कठिन वैदिक शब्दों का अभिधान। ग्रन्थकार ने रचना की है 'लघु निरुक्त'। बँगला हमारी मातृभाषा होते हुए भी हम बहुत से बँगला शब्द की व्युत्पत्ति, भाषारुढ़ार्थ और योगारूढ़ार्थ के सम्बन्ध में सम्यक् अवहित नहीं हैं। फलतः बहुत सी जगहों पर मन का भाव प्रकाश करते समय ऐसे अनेक शब्दों का व्यवहार कर डालते हैं जो व्याकरण की दृष्टि से गलत हैं। जैसे—'अभिजात' (aristrocratic) माने कहते हैं 'सम्भ्रान्त', 'पर्याप्त', समझाते समय कहते हैं 'अपर्याप्त', 'सरव' या 'मुखर' (vocal) समझाने के लिए कहते हैं 'सोच्चार', 'आइबुड़ो' समझाने के लिए कहते हैं 'आइबड़', 'वृहत्-शंख' समझाने के लिए कहते हैं 'महाशंख' इत्यादि। असल में 'सम्भ्रान्त' (सम्—भ्रम् + क्त) माने सम्यक रूप से भ्रान्त है अर्थात् जिसने बड़ी सी भूल की है। 'सोच्चार' (स + उच्चार) माने जिसने उच्चार अर्थात् मल त्याग किया है, किन्तु जलशौच नहीं किया। बहुत से शिक्षित लोग भी इस 'उच्चार' शब्द के साथ 'उच्चारण' शब्द को गड़बड़ कर डालते हैं, 'उच्चार' माने विष्टा या मल। महासंख माने वृहत् शंख नहीं—मरे व्यष्टि की खोपड़ी। छः सौ पृष्ठों वाला

यह विपुल कलेवर 'लघु निरुक्त' के शुरुआत में लेखक ने प्रायः चार हजार प्रयोजनीय शब्दों की व्युपत्ति और सदर्थ निर्णय किया है। बँगला भाषा विज्ञान के उच्चतर गवेषणा के हिसाब से यह पुस्तक अपरिहार्य है।

बँगला और बंगाली

पृथ्वी के वक्षस्थल पर बंगाली नामधारी जनगोष्ठी का समाज, सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में अपना निजी बैंशिष्ट्य है। और इस वैशिष्ट्य को उसने पाया है गङ्गा, ब्रह्मपुत्र और राढ़ीय नदियों से बाहित आर्य, मङ्गोल और ऑष्ट्रिक सभ्यता के विमिश्रण के फलश्रुति के रूप में। बंगाली का यह स्वकीय वैशिष्ट्य प्रतिफलित हुआ है उसके सामाजिक संरचना में, उसके धर्मचिन्तन में, उसके साहित्य में, शिल्प में और कृषि में, उसका स्थापत्य और भास्कर्य में यहाँ तक कि उसकी राजनीति में भी। ग्रन्थकार ने अपने ५०० पृष्ठा-संकलित इस वृहत् ग्रन्थ में बँगला और बंगाली का उस काल और इस काल के बहुत तत्थ्य को सामने लाया है, इस सब ने आलोच्य सूची में स्थान पाया है—तन्त्र और आर्य-भारतीय सभ्यता में बंगाली का स्थान। सभ्यता का आदिविन्दु-राढ़ (यहाँ तक लेखक राढ़ की जनता, जीव, जन्तु, राढ़ की भाषा, साहित्य और संस्कृति, राढ़ की लिपि, मङ्गलकाव्य और वैष्णव काव्य, राढ़ के मन्दिर, प्राकृतिक सम्पद् और जलवायु के ऊपर दृष्टिपात् किया है), गण्डोयाना लैण्ड और बंगाल, जाति–बंगाली ; बंगाल की नदी मातृक सभ्यता। बंगाल के इतिहास का छिटफुट, बंगाल का नववर्ष और बसन्तोत्सव, बंगाल के साथ मगध, अङ्गदेश, मिथिला, मणीपुर, अरुणाचल, भूटान, नेपाल, और केरल, का योगायोग, बंगाल की सामाजिक परिचिति, बँगाली का धर्मचिन्तन, शौर्य में बंगाली, कृषि और शिल्प में बंगाली, बंगाल के आधुनिक मनीषी इत्यादि।

एक ही साथ में आलोच्य ग्रन्थ में छात्र, शिक्षक और गवेषक, बंगाल और बंगाली के इतिहास का बहुत कुछ ही जान पायेंगे।

यौगिक चिकित्सा और द्रव्यगुण

चिकित्सा का उद्देश्य शारीरिक और मानसिक स्वस्थता का विधान है। इसलिए इसमें चिकित्साशास्त्र विशेष की सम्मान रक्षा का बड़ा प्रश्न नहीं है—बड़ी बात है रोगी का कल्याण। वाह्यिक अथवा आन्तरिक औषधि के प्रयोग द्वारा विकारग्रस्त देहयन्त्र को जैसे भी हो स्वाभाविक अवस्था में लाना है, ठीक वैसे ही यौगिक आसन-मुद्रादि को सहायता से अधिकतर निरापद और परिष्कार ढंग से देहयन्त्र की स्वाभाविक कर्मदक्षता को लौटा लाना सम्भव है। हरेक व्याधि की चिकित्सा पद्धति के बारे में जनसाधारण को जानकारी देना ही इस पुस्तक का उद्देश्य है। पुस्तक में वर्णित आसन मुद्रादि के बारे में खुद कोई जोखिम न उठाकर अभिज्ञ प्रशिक्षक से परामर्श लेकर चलें। आसन-मुद्रा के साथ ही साथ बिना व्यय के अथवा सामान्य व्यय कर सहज लभ्य कुछ कुछ फलप्रद परिक्षित औषधि की और उनकी विधि भी दी गई है। पुस्तक में आलोच्य सूची है : अजीर्ण रोग, हार्निया, कोढ़, कृश्यता, गरल, और खाज (Eczema), धातु दुर्बलता, लकवा, पाकस्थली का घाव अथवा आन्त्रिक घाव, पित्ताश्मरी, बहुमूत्र, प्रमेह, बधिरता, वात रोग, हाईड्रोसिल, मुत्राश्मरी इत्यादि।

महाभारत की कथा

महाभारत पृथ्वी का अन्यतम एपिक है—फिर इतिहास भी। युग युग से भारतीय जनगण के ऊपर इसका प्रभाव अपरिसीम है। महाभारत का प्रत्येक चरित्र ही जीवन्त है, वे प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से मनुष्य को बहुत कुछ शिक्षा देते हैं। ग्रन्थकार ने नाति-वृहत्

(अति वृहद् नहीं) इस पुस्तक में आलोचना की है। महाभारत के नामकरण के तात्पर्य का, श्री कृष्ण ही इस महाभारत के नायक हैं, महाभारतीय युग की शिक्षा पद्धति, चिकित्सा पद्धति, सामाजिक संरचना, नैतिक मान, श्री कृष्ण की कर्मधारा, महाभारत के विशेष विशेष चरित्र—भीष्म, द्रोण, गान्धारी, विदुर, द्रौपदी इत्यादि, कर्मचरित्र का मूल्यायन महाभारतीय युग के रूपकार श्रीकृष्ण, विश्व के प्राण केन्द्र श्री कृष्ण, महासम्भूति श्रीकृष्ण महाविश्व की परिकल्पना।

वर्ण विचित्रा (८ पर्व)

सन् १९८३ ई० के १३ वी नवम्बर से मार्गगुरु बँगला भाषा और व्याकरण को सम्पूर्ण नये दृष्टिकोण से एक विशेष अङ्ग को, प्रत्येक वर्ण को लेकर विश्लेषित रूप से आलोचना शुरू की, और वह आलोचना लगातार चलती रही सन् १९८५ ई० के १ ली सितम्बर तक। यहाँ तक कि आलोचनायें वर्ण-विचित्रा नाम से धारावाहिक रूप से ८ वर्ष में प्रकाशित हुयीं, इस वर्ण-विचित्रा में ग्रन्थाकार की रचना कुल मिलाकर १८०० पृष्ठों की है। लेखक ने प्रत्येक वर्ण की आलोचना की है यथाक्रम से उसकी भूमिका, उच्चारण, उत्पत्ति, अर्थ, तत्सम, तद्भव, देशज और वैदेशिक शब्द में संश्लिष्ट वर्ण का व्यवहार, सन्धि, उपसर्ग, बीजमन्त्र में और शब्द के आदि में संश्लिष्ट अक्षर के प्रयोग को विश्लेषित कर आलोचना की गई है। भाषा और व्याकरण में वर्ण के इस प्रकार की बहुधा-विचित्र व्यवहार के लिए, ग्रन्थों का नामकरण हुआ है 'वर्ण-विचित्रा'। केवल बँगला भाषा में ही नहीं, पृथ्वी की किसी भाषा में ही, एक एक वर्ण को लेकर वहुधा-विचित्र व्यवहार लेकर ऐसी कोई पुस्तक है ऐसा जान नहीं पड़ता।

शब्द चयनिका (२६ खण्ड)

सन् १९८५ ई० के ८ वीं सिप्तम्बर से मार्गगुरु ने प्रारम्भ किया एक दूसरी नयी प्रकार की रचना। किसी भाषा की स्वीकृति के लिये अपरिहार्य उपादानों का अन्यतम हुआ शब्दसम्भार (vocabulary)। यह शब्दसम्भार बना है मानव मनीषा का बहुमुखी अभिव्यक्ति का धारा पथ ; जैसे कुछ शब्द हैं दर्शन से सम्पर्कित, कुछ शब्द है पदार्थ विद्या के, रसायन विद्या या जीव विद्या के साथ, कुछ हैं चिकित्सा या सङ्गीत विद्या से सम्पर्कित। अब प्रत्येक शब्द के उद्भव के पीछे रह जाता है उसकी व्युत्पत्ति, भावारूढ़ार्थ, योगारूढ़ार्थ इत्यादि। जैसे,—हमलोग बँगला में कहते हैं 'अति' (वह अति चोट देकर बात-करना) कहते हैं। अब किसी पाठक की बौद्धिक भूमि को दृढ़ करने के लिए शब्द के उद्भव और प्रयोग के बारे में अवहित करना होगा। इसलिए कहना होगा, यह आँत (अतड़ी) शब्द अ.या है संस्कृत 'आत्मा' शब्द से। संस्कृत 'आत्मा' मगधी प्राकृत में विशेष कर पश्चिमी अर्ध-मागधी के क्षेत्र में हो जाता है 'अत्ता' (अत्ता हि अत्तानं नाथ) ; पूर्वी अर्ध-मागधी के क्षेत्र में होता है 'अत्ता'। उसी से वर्तमान बँगला में 'आँता' है। 'आँत्' शब्द 'आँता' का संक्षिप्त रूप है। 'आँते घा' माने आत्मा पर आघात। बहु भाषाविद् और नवतम भाषा-विज्ञान के पथिकृत ग्रन्थाकार ने ऐसे वर्णानुक्रम से असंख्य शब्दों को लेकर आलोचना की है। किसी किसी क्षेत्र में एक एक शब्द को लेकर आलोचना की है। किसी किसी क्षेत्र में एक एक शब्द की आलोचना की गई है, बीस तीस पृष्ठों तक। सन् १९८५ ई० में ८ सितम्बर से सन् १९९० ई० के १४ अक्टूबर तक दीर्घ पाँच वर्ष से ग्रन्थाकार ने ऐसी आलोचना की हैं। यह प्रकृत प्रस्ताव से शब्द कोष पर्याय रचना है। प्रायः ६००० हजार पृष्ठों में लेखक ने

मुख्यतः व्याकरण और भाषाविज्ञान ओर गौणतः मानव मनीषा के अन्यान्य दिशाओं को लेकर विशद आलोचना की हैं। बँगला भाषा और साहित्य को जो लोग पसन्द करते हैं, उनके लिए यह शब्द-चयनिका सिरीज अत्यन्त मूल्यवान् है।

नृत्य-वाद्य-गीत-तीन मिलकर सङ्गीत

गीत, वाद्य और नृत्य ये तीनों मिलकर सङ्गीत है। गीत है, ऐसी एक वस्तु जो स्थूल जगत् में है, किन्तु उसकी तरङ्ग बार बार मानस जगत् के भीतर आ पड़ती है। गीत में जैसा भाव है वैसा ही छन्द में भी है, सुर में भी है; वाद्य किन्तु वैसा भावाश्रयी नहीं है। मन को तरङ्गायित करके सीधे चित्ताणु को तरङ्गायित करना और भाव के साथ समन्वय साधन करना, वाद्य यन्त्र का काम है और नृत्य हुआ मानसिक भाव के भाषा की सहायता न लेकर ही अभिव्यक्त करना छन्द और मुद्रा के द्वारा। पाश्चात्य देशीय नृत्य मुख्यतः छन्द प्रधान है; किन्तु प्राच्य नृत्य मुख्यतः मुद्रा प्रधान है, तब वह छन्द की सहायता भी लेता है। ग्रन्थकार ने अपने सङ्गीत विषयक इस पुस्तक में नन्दन विज्ञान और मोहन विज्ञान के बारे में आलोचना की है।

कृषि कथा (दो खण्ड में)

हम ने पहले ही बताया हैं, ग्रन्थकार का सब विषय में ही प्रचण्ड आग्रह और पाण्डित्य था। इसीसे हमलोग देखते हैं ज्ञातव्य विषय सामने आते ही उपस्थित श्रोताओं को ५ समूचे विषय के बारे में सविस्तार बताते। इसलिए उनके ज्ञानानुशीलन में पेड़-पौधे, जीव जन्तु कहीं पर कोई भी नहीं छूटता। उनकी कृषि-विषयक आलोचनायें 'कृषियथा' शीर्षक में दो खण्ड में प्रकाशित हुई—आलोच्य विषय सूची है: ताड़, नारियल, खजूर, सुपाड़ी, केला, गुलाब,

श्रीफल (बेल), बैंगन, कटहल, इमली, कुँदरी (१) फुटी, अदरख, हल्दी, गोलमरीच, आम, जामुन इत्यादि ।

अभिमत (नौ खण्ड)

सभा, राष्ट्र, नीतिविज्ञान, इतिहास, नन्दनतत्त्व, शिल्प, आध्यात्मिक, भाषा, पुरातत्व इत्यादि विभिन्न गुरुत्वपूर्ण मौलिक विषय में मार्गगुरु ने देव अपना सुचिन्तित अभिमत दिया है। ये 'अभिमत' नामसे धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुये हैं अभी तक आठ खण्डों में। छात्र-शिक्षक-गवेषकों के लिए हरेक खण्ड ही मूल्यवान् है।

प्रभात-सङ्गीत २०१ खण्ड (५१८ गान)

सङ्गीत जगत् में अनवद्य और अभिनव विषय हुआ प्रभात सङ्गीत। १९८३ ई० के १४ सितम्बर को विहार, देवघर में मार्गगुरु ने प्रभातसङ्गीत की रचना करनी शुरू की। १९९० ई० के २० फरबरी (महाप्रयाण के पूर्व दिन। रात्रि ११-३० मिनट समय पर प्रभात-सङ्गीत के शेष ५०१८ संख्यक गान की रचना की। गाना था प्रस्तावित आनन्द मार्ग विश्वविद्यालय सम्पर्कित। भाव, भाषा, सुर वैचित्र्य और छन्द माधुर्य के माने में प्रभात-सङ्गीत अवश्य ही स्वकीय वैशिष्ट्य समुज्ज्वल है। इसके अलावे प्रभात सङ्गीत में है नाना हद तक नाना आङ्गिक के गान। जैसे, भक्तिगीति, भाव सङ्गीत, ऋतु पर्याय के गान, मिष्टिसिज्म केन्द्रिक गान, अनुष्ठानाङ्गिक गान, गण-सङ्गीत, देशप्रेम के गान, झुमुर, बाउल, कीर्त्तन और भांगा कीर्त्तन गजल और भांगा गजल। कौवाली, शिवगीति, कृष्ण विषयक गान इत्यादि और कितने क्या है। मार्ग गुरु स्वयं ही एक तरफ सङ्गीत-रचयिता और सुरकार हैं—उन्होंने लिखा हैं बँगला, अंग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत, अङ्गिका, भोजपुरी, मैथिली, मगही इत्यादि नाना भाषाओं में। एक एक खण्ड में २५ करके गाने रखे गये हैं।

हमारे पड़ोसी पशु और पक्षी

नव्यमानवतावादी प्रभातरञ्जन की दृष्टि में मनुष्य जिस ईश्वर की एक महान सृष्टि है, उसी तरह मनुष्य की भाँति जीवजन्तु का भी मूल्य कम नहीं है। इसीसे उन्नतधी मनुष्य के लिए अपने पड़ोसी पशु-पक्षी के प्रति एक विशेष नैतिक दायित्व और कर्त्तव्य है। जीवः जीवस्य भोजनम्' अथवा 'जोर जार मुल्लुक तार' नीति के अनुसरण का महत्व प्रगट होता है। आलोच्य पुस्तक के नामकरण में ही लेखक का वह नव्यमानवतावादी दृष्टिभङ्गी सुस्पष्ट है। इसकी आलोचना में स्थान प्राप्त किया है, ईगल, चातक, पानकौड़ी, मयना, चड़ुइ, कबूतर, पातिहँस, काक, उल्लुक, विभिन्न तरह के साँप, कण्डोर, मयूर शूकर इत्यादि।

प्रभात रञ्जन का व्याकरण विज्ञान (३ खण्ड)

भाषा विज्ञान और व्याकरण को लेकर तीन खण्ड का सीरिज है— प्रत्येक खण्ड में ५०० पृष्ठ हैं। भाषा विज्ञान और व्याकरण के ऊपर लिखी बाजारू पुस्तकों से इस सीरिज का बहुत ही अन्तर है। जैसे—प्रथम खण्ड के शुरू में ही लेखक ने बँगला संस्कृत के भाषागत् ध्वनि विज्ञान के बारे में एक सुन्दर तुलनामूलक आलोचना की हैं २० पृष्ठों में। अन्यान्य खण्डों में आलोचित हुआ है भाषा का उद्भव और वैचित्र्य, कारक, विभक्ति, बँगला शब्द सम्भार में फारसी बँगला शब्द बनाने की प्रवणता इत्यादि। इसके अतिरिक्त इस सीरिज का सबसे बड़ा आकर्षण है मूलधातु और शब्दसम्भार' अध्याय में—प्रायः ३०० पन्नों में लेकर। बँगला शब्द की व्युत्पत्ति में उपसर्ग, मूलधातु और प्रत्यय की भूमिका अनस्वीकार्य है। तृतीय खण्ड में प्रायः १५४ प्रकार के प्रत्यय की बात ने स्थान पाया हैं। शिक्षक अध्यापकों का एक विशाल अंश ही व्युत्पत्ति के साथ अपने अपने

नाम की व्याख्या कर नहीं सकते। मूल कारण है उपसर्ग, मूलधातु और प्रत्यय सम्बन्ध में ज्ञान का अभाव है। इसके अतिरिक्त ग्रन्थकार ने प्रसङ्गक्रम में आदि 'ल' और अन्तःस्थ 'ल', वर्गीय 'ब' और अन्तःस्थ 'व', ण-त्व विधान, ष–त्व विधान, इ–कार और ई–कार व्यवहार की रीति, दीर्घ, ॠ, दीर्घ ॡ का व्यवहार इत्यादि बहुत से गुरुत्त्वपूर्ण विषय पर अपना सुस्पष्ट अभिमत व्यक्त किया हैं। मुख्य बात छात्र, अध्यापक और गवेषकगण बँगला व्याकरण और भाषा-विज्ञान के बारे में नई सूझ पायेंगे, गन्थकार की इस सीरिज के ग्रन्थों से।

उपरोक्तलिखित पुस्तकों के अलावे भी ग्रन्थाकार की और भी कुछ रचना अभी भी पाण्डुलिपि अवस्था में हैं। इसीसे कह रहा था, एक व्यष्टि के लिए एक साथ विश्व संस्था परिचालना, लाखों लाख मनुष्य के नैतिक और आध्यात्मिक पथ पर निर्देशना देना और उसके साथ इतनी अधिक संख्यक पुस्तक रचना एक प्रकार से असम्भव है। मार्गगुरु ने उस असम्भव को सम्भव किया हैं। विश्व के बुद्धि-जीवियों से आवेदन रहा, वे अपने खुले मन से इन महाप्रतिभाधर महामानव के अमूल्य चिन्ताधारा का अध्ययन करें।

: — :